शक्ति स्थापित कर लेते थे। इन्हीं में से एक एमोराइट नामक जाति, जिन्हें पश्चिमी सेमाइट भी कहा जाता है, ने 18वीं शती ई0पू0 के मध्य काल में बेबिलोन को शक्ति का केन्द्र बनाकर अपना उत्कर्ष प्रारम्भ किया। इनके द्वारा स्थापित साम्राज्य मेसोपोटामिया के इतिहास ने 'बेबिलोनियन साम्राज्य ' के नाम से जाना जाता है। बेबिलोनियन साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ सुमेरियन साम्राज्य का स्वतंत्र अस्तित्व पूर्णतया समाप्त हो गया ।

राजनीतिक व्यवस्था–सुमेरियन राजनीतिक संगठन एक प्रकार से नगर-राज्यों का एक शिथिल संघ था। यह संघ केवल युद्धों में ही परस्पर संगठित होते थे। परवर्ती लेखों तथा सुमेरियन आख्यानों से विदित होता है कि संकट के समय अथवा आपातकालीन स्थिति में शासक कुछ लोगों से परामर्श लिया करते थे। इससे कतिपय सदनों की उपस्थिति की सूचना तो मिलती है, परन्तु विस्तृत जानकारी का अभाव है। आरम्भिक कालों में यहाँ का शासन यहीं के लोगों के हाथ में था। वे सामूहिक रूप में इकठा होकर अपनी समस्याओं का समाधान करते थे। इसके लिए इनके दो संगठन बने थे एक में वयस्क होते थे तथा दूसरे में अनुभव प्राप्त वृद्ध लोग। ये दो सभाएं थी, जिसका प्रारूप आधुनिक सीनेट और सिंडीकेट की तरह रहा होगा अथवा ऋग्वैदिक भारत की सभा एवं समिति की तरह। यह जनतन्त्रात्मक व्यवस्था सम्भवतः विश्व इतिहास का प्रथम जनतन्त्र है।

राज्य का स्वरूप एवं प्रशासन तन्त्र–प्रारम्भिक काल में पूरा राज्य छोटी-छोटी इकाइयों में विभक्त था। प्रत्येक इकाई का केन्द्र नगर होता था। इसी के समीप ही कुछ उर्वर-भूमि होती थी तथा कुछ ग्राम भी होते थे। ये स्वतन्त्र इकाई की भाँति थे। इस केन्द्रीय नगर को राज्य कहा जाता था 'इनका शासक राजा होता था जिसे 'पेटेसी' या 'पुरोहित नरेश कहा जाता था। उस समय शासन के व्यवस्थित ढंग से संचालन के लिए कुछ अधिकारी भी नियुक्त किये जाते थे। ये अपनी शक्ति इतनी बढ़ा लेते थे कि वहाँ का शासक धीरे-धीरे उन्हीं के हाथ की कठपुतली बन जाता था। उनमें भी जो शक्तिशाली होता था वह पड़ोसी अधिकारियों को भी अपने अधीन कर लेता था। इस प्रकार यहाँ प्रशासन तन्त्र की दो श्रेणियां थीं–अधीनस्थ राज्य के शासक तथा प्रमुख शक्तिशाली अधिकारी। पहली श्रेणी के शासकों को 'पटेसी' या 'पुरोहित नरेश' कहा जाता था, जबकि दूसरी श्रेणी के शासकों को 'लूगल' कहते थे।

पटेसी एवं लूगल–पटेसी नगर-राज्य का शासक, नगर का प्रधान पुरोहित न्यायाधीश, सेनानायक तथा सिंचाई व्यवस्था का अधीक्षक था। इस तरह उसे राजनीतिक एवं धार्मिक दोनों महत्ता मिली थी। इसका पद वंशानुगत होता था। पटेसी को एनसी भी कहा जाता था। यह देवता का प्रतिनिधि माना जाता था, क्योंकि एनसी का अभिप्राय 'देव प्रतिनिधि' होता है। लूगल का अर्थ है महान् व्यक्ति। इस प्रकार यह पद पटेशी की अपेक्षा अधिक सम्मानित था। वास्तव में, जब कोई पटेसी कई नगर राज्यों को जीतकर अपने नगर में मिला लेता था तब वह पटेसी के स्थान पर लूगल उपाधि धारण करता था अर्थात् यदि पटेसी नगर शासक था तो लूगल राज्य का शासक था। इस प्रकार एक की शक्ति सीमित थी तथा दूसरे की विस्तृत। उम्मा के एक शासक ने लूगल उपाधि धारण की थी, इसीलिए वह इतिहास में लूगल-जग्गेसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। पटेसी तथा लूगल के अन्तर को एक अन्य दृष्टि से भी

समझा जा सकता है। वास्तव में, पटेसी राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का द्योतक है, जबकि लूगल राजनीतिक एकता का। प्रारम्भ में लूगल का पद स्थायी नहीं था, क्योंकि जब कोई लूगल अपनी शक्ति खो बैठता था तो उसे पुनः पटेसी की उपाधि मिल जाती थी। कालान्तर में हम देखते हैं कि पटेसी अपने पद का दुरुपयोग करने लगे तथा शनैः-शनैः विभिन्न मदों से प्रचुर मात्रा में कर वसूलने लगे। लगश के उरु-कगिना ने इस व्यवस्था में सुधार करने का प्रयास किया था, किन्तु उसका कोई स्थायी प्रभाव न पड़ा तथा उसे उम्मा के शासक लूगल-जग्गेसी ने अपदस्थ कर दिया। पटेसी तथा लूगल दोनों शाही भवनों में रहते थे। इस प्रकार के दो शाही भवनों के भग्नावशेष किश एवं एरिडु से प्राप्त हुए हैं। शासक ही मन्दिरों की सम्पत्ति की देख-रेख करता था, युद्ध का नेतृत्त्व करता था, प्रधान न्यायाधीश तथा सार्वजनिक निर्माण कार्य सम्पन्न करवाता था। उसका एक प्रमुख कार्य मन्दिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार करना था। यहाँ से बहुत से ऐसे रिलीफ चित्र प्राप्त हैं, जिसमें शासक को नये मन्दिर के निर्माण के लिए ईंट ले जाते हुए प्रदर्शित किया गया हैं, नव वर्षोत्सव तथा अन्य अवसरों पर भी नगर शासक की अहम् भूमिका होती थी। नगर-शासक के अतिरिक्त नगर के धार्मिक एवं सार्वजनिक जीवन में साम्राज्ञी भी महत्त्वपूर्ण कार्य करती थी।

कानून एवं विधि संहिता–सुमेरियन प्रशासन की आधारशिला इनकी विधि-संहिता एवं कानून थे। सुमेरियन कानून एक प्रकार से यहाँ प्रचलित परम्पराओं का एक संकलित रूप था। इसमें स्थानीय परम्पराओं के छटन एवं संग्रंथन का विशेष प्रभाव रहा। कानून में स्थानीय रीति-रिवाजों एवं आचारों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था। पर अलग-अलग राज्य की स्थिति तथा उनकी परम्पराओं के कारण इसमें वैविध्य होने लगा। इससे स्वेच्छाचारिता को पूर्ण स्वतन्त्रता मिलने लगी थी। फलस्वरूप एक व्यवस्थित एवं सर्वमान्य कानून की आवश्यकता महसूस की गयी। सुमेरिया में केन्द्रीय प्रशासन स्थापित होने से इसकी माँग जोर पकड़ने लगी थी। सेमेटिक कानून की अपेक्षा अब ये सरल और संक्षिप्त बनाये जाने लगे।

समयान्तर से सुमेरिया के ख्यातिलब्ध शासक दुंगी ने इन कानूनों को संहत एवं संकलित रूप प्रदान किया। इसका मूलरूप तो उपलब्ध नहीं है जिसके कारण इनकी व्यापकता अथवा सूक्ष्मता एवं प्रकृति के विषय में निश्चयतः कुछ नहीं कहा जा सकता है। ऐसा ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम यहाँ के सम्राट उर-ऐंगुर ने विश्व की संभवतः सर्व प्राचीनतम विधि-संहिता तैयार किया था पर यह इतनी खण्डितावस्था में मिली है कि इस पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसके बाद उसके पुत्र दुंगी ने राजा बनने पर इसमें कुछ विस्तार किया। इसका मूलरूप अब उपलब्ध नहीं है पर इसे हम्मूरावी की विधि संहिता के लिए आधार होने से कहा जा सकता है कि इस विधि-संहिता का स्वरूप सर्वमान्य होने लगा।[1] यही आगे चलकर वहाँ के राजतन्त्र की आधारशिला बनी। प्रस्तुत प्रसंग में यह कहना समीचीन लगता है कि बेबिलोन के प्रसिद्ध शासक हम्मूराबी ने अपनी प्रसिद्ध विधि संहिता की रचना में इन कानूनों का कदाचित् प्रयोग किया है। संग्रहीत एवं संकलित होने के कारण ही दुंगी के विधि संग्रह को 'विधि-संहिता' की संज्ञा दी गयी है। इसे वर्तमान पारिभाषिक शब्दावली में कोड

कहा जाता है। दुंगी विधि संहिता की विशिष्टता इसकी ग्रहणशीलता के परिप्रेक्ष्य में देखी जा सकती है।

विशेषताएँ–5दुंगी की विधि संहिता की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् थीं–

(1) इस विधि संहिता में प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त विहित था। इसके अनुसार प्रताड़ित व्यक्ति न्यायतः अपराधी को उसी प्रकार हानि पहुँचाने का अधिकारी था जिस प्रकार से उसे क्षति हुई हो अर्थात् यदि कोई व्यक्ति किसी की आँख फोड़ देता था या हाथ तोड़ देता था, तो दण्ड विधान के अनुसार अपराधी की भी आँख फोड़ दी जाती थी या हाथ तोड़ दिया जाता था। यह सिद्धान्त 'शठे शाठ्यं समाचरेत', जैसे का तैसा' अर्थात 'टिट फॉर टैट' की याद दिलाता है।

(2) इसमें वर्णित न्याय व्यवस्था अर्द्ध वैयक्तिक थी। न्यायालय केवल अपराधी तथा पीड़ित व्यक्ति के बीच मध्यस्थता करता था। अपराधी को न्यायालय के समक्ष उपस्थित करने का उत्तरदायित्व पीड़ित व्यक्ति के ऊपर होता था, किन्तु दण्ड क्रियान्वयन में न्यायालय से सम्बद्ध सिपाही पीड़ित व्यक्ति की सहायता करते थे।

(3) यह न्याय व्यवस्था पक्षपात विमुख नहीं था। इसमें भी सामाजिक भेदभाव निश्चित रूप से विद्यमान था। विधान के अनुसार सुमेरियन समाज अभिजात, सर्वसाधारण एवं निम्न वर्गों में बँटा था। दुंगी ने न्याय सम्पादन एवं दण्ड-निर्धारण में सामाजिक पक्षपात किया तथा सामाजिक स्तर का सदैव ध्यान रखा था। एक ही प्रकार के अपराध में यदि पीड़ित व्यक्ति अभिजात वर्ग से सम्बन्धित होता था, तो अधिक दण्ड दिया जाता था, किन्तु यदि उसका सम्बन्ध सर्वसाधारण या निम्न वर्ग से होता था तो दण्ड की सीमा क्रमशः घटती जाती थी। इसका यह अभिप्राय नहीं था कि अभिजात वर्ग के सदस्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें। दण्ड निर्धारण के समय अपराधी के सामाजिक स्तर का भी विशेष ध्यान रखा गया था। अभिजात वर्ग के अपराधी निम्न वर्ग के अपराधी की अपेक्षा अधिक दण्ड पाते थे। इस प्रकार की व्यवस्था का मूल उद्देश्य सैनिक अनुशासन बनाए रखना था। कारण कि सैन्य संगठन में अभिजात वर्ग के सदस्य ही अधिक थे। अतः उनसे अपराध की सम्भावनाओं को दूर रखने के लिए ही ऐसा किया गया था। उनसे यह अपेक्षा की गयी थी कि वे कुप्रवृत्तियों के वशीभूत होकर किसी प्रकार का अनैतिक आरचरण न करें।

(4) इस विधि संहिता में आकस्मिक एवं सुनियोजित हत्या में कोई भेद नहीं माना गया था। दोनों के लिए एक ही दण्ड विधान था। आकस्मिक हत्या में अपराधी दण्ड से बच नहीं सकता था। ऐसी स्थिति में अपराधी पीड़ित व्यक्ति के परिवार को मुआवजा देता था। ध्यातव्य है कि मुआवजा देने की प्रथा के विकास की मूल प्रेरणा इन्हें कहाँ से मिली थी, यह निश्चयतः ज्ञात नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका एक मात्र ध्येय पारिवारिक समन्वय एवं सन्तुलन जिसमें पिता का पत्नी तथा बच्चों पर पूर्ण अधिकार माना जाता था, बनाना था।

न्याय एवं दण्ड विधान–सुमेरियन विधि-संहिता के अनुसार ही यहाँ न्याय किया जाता तथा दण्ड-प्रदान किया जाता था। न्यायालय का कार्य मन्दिर करते थे तथा पुरोहित ही न्यायाधीश होते थे। वे वास्तविक न्यायाधीश न होकर केवल मध्यस्थ, लेख्य प्रमाणक तथा

अभिनिर्णायक मात्र थे। परम्परया मुकदमे मन्दिरों या मन्दिरों के बाहर ही सुने जाते थे। मन्दिरों में ही इन्हें प्रस्तुत किया जाता था। सभी प्रकार के मुकदमें मश्किम नामक अधिकारी सुनता था। यदि वह निर्णय नहीं कर पाता था तो अन्य व्यावसायिक न्यायाधीशों को बुला लिया जाता था। यदि पीड़ित व्यक्ति इस निर्णय से भी असन्तुष्ट होता था, तो सर्वोच्च न्यायालय में उसकी अपील करता था। उर के तृतीय राजवंश के पतन के पूर्व यहाँ एक प्रान्तीय न्यायालय भी था। इसकी अध्यक्षता नगरपति करता था। इसकी सहायता कुलीनों की एक समिति करती थी। उर के इब्बी-सिन को इस प्रकार की एक समिति को सम्बोधित करते हुए दिखाया गया है। न्याय करते समय प्राचीन मुकदमों में निर्णयों को नजीर रूप में प्रस्तुत किया जाता था। वादी तथा प्रतिवादी दोनों अपनी-अपनी बात न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करते थे। यहाँ अधिवक्ताओं के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

सुमेरियन दण्ड-विधान अत्यन्त सरल था अर्थात् दण्ड निर्धारण में उदारता का दृष्टि-कोण अपनाया गया था। इसे कुछ अपराधों एवं उसके लिए निर्धारित दण्डों के परिप्रेक्ष्य में भली-भाँति समझा जा सकता है। व्यभिचार के अपराध में भी स्त्री को छोड़ा नहीं जाता था, बल्कि पुरुष दूसरा विवाह करके इसे दासी के रूप में रख सकता था। भागे हुए दास को शरण देने वाले को अर्थ-दण्ड देना पड़ता था। कभी-कभी बहिष्कार सम्बन्धी दण्ड भी प्रदान किया जाता था। यदि कोई दास अपने स्वामी का कहना नहीं मानता था; तो उसका विक्रय या निर्वासन किया जाता था। दण्ड लागू करने का दायित्व न्यायालय या सरकार पर नहीं था, अपितु याची स्वयं अपराधी को दण्ड देता था।

सैन्य संगठन एवं युद्धकला—प्राचीन विश्वइतिहास में युद्ध-कार्य को कला का स्तर सर्वप्रथम सुमेरियनों ने ही दिया। सुमेरियनों की सामरिक कुशलता की अभिव्यक्ति इनके दैनिक जीवन में दिखलायी पड़ती है, इनके वर्ष के नामकरण में सैनिक विजयों का उल्लेख मिलता है। इनके देवताओं के प्रतीक रूप में युद्धास्त्रों को चुना गया था। सुमेरिया नगर के राज्य युद्ध प्रिय थे। अतः अक्कादी राजाओं के पास एक व्यवस्थित सेना थी। प्रायः कहा जाता है कि अक्काद नरेश सारगोन के पास 5400 पदाति थे जो उसके साथ नित्य भोजन करते थे। इनके संघर्ष सदैव पड़ोसी राज्यों पर अधिकार स्थापित करने अथवा व्यापारिक मार्गों एवं माल इत्यादि के लिए होते थे। अक्कादी शासक मनिश्तुसु की इस घोषणा से कि वह एलम पर इसलिए आक्रमण कर रहा है, क्योंकि वहाँ से चाँदी तथा अपनी मूर्ति बनवाने के लिए पत्थर प्राप्त करना चाहता है, इस कथन की पुष्टि हो जाती है। कभी-कभी नदी के मार्ग में परिवर्तन के कारण भी युद्ध छिड़ जाता था। आन्तरिक युद्धों के साथ-साथ बाहरी आक्रमण के खतरों को टालने के लिए भी उनकी सामरिक क्षमता का विकास हुआ था। युद्ध का नेतृत्व पटेसी करता था। प्रत्येक पटेसी के पास एक व्यवस्थित पदाति सेना रहती थी। इनकी सूची मन्दिरों में रहती थी। यहाँ के सैनिक ताँबे के शिरस्त्राण तथा शरीर पर मोटा कवच धारण करते थे, ताकि शत्रु उनका कुछ न बिगाड़ सके। शस्त्र के रूप में वे भाले, बर्छा, ढाल का प्रयोग करते थे। वे आरम्भ में धनुष-बाण का प्रयोग नहीं जानते थे। इसे उन्होंने अक्कादी सेमाइटों से सीखा था। इसके ज्ञान से उनकी सामरिक क्षमता में वृद्धि हुई। सुमेरियन आक्रमणात्मक युद्धों में रथों का प्रयोग भी करते थे। लेकिन इनमें घोड़ों के स्थान